❐ जानकीनारायण श्रीमाली

भारतीय शिक्षा

भारतीय संस्कृति में शिक्षा शब्द अत्यन्त पवित्र, आदर्श और उपकारी माना गया है। 'शिक्षैव शिक्षा' का अर्थ है – गुरु द्वारा शिष्य को दी गई सीख। इस सीख को, शिक्षा को सर्वोपकारिणी माना गया है अर्थात् यह सभी प्रकार के उपकार करनेवाली है। शिक्ष् से शिक्षा का निर्माण हुआ है जो कि सीखने का प्रतीक है और सीखने की प्रक्रिया आजीवन चलती रहती है। इसलिये शिक्षा भी जीवन पर्यंत चलनेवाली प्रक्रिया है। सभी प्रकार की विद्याएँ सीखने से ही फलदाई होती हैं। वेद में समता को शिक्षा माना गया है।

भारतीय साहित्य में वेद और उपनिषद अथाह ज्ञान के भंडार हैं। वैसे तो उपनिषद कहानियों तथा पारस्परिक संवादपूर्वक तत्व का बोध कराते हैं और इस प्रकार सभी उपनिषद शिक्षाप्रद हैं किन्तु तैत्तरीय-उपनिषद में सीधा ही शिक्षा पर प्रकाश डाला गया है। तैत्तरीय-उपनिषद में शिक्षावली नाम से एक स्वतंत्र अध्याय में शिक्षा की विवेचना करते हुए, शिक्षा प्राप्त करने के साधन, विधि और सावधानियों का विस्तार से उल्लेख किया गया है। इस सब विषय को समझाने के साथ उपनिषद सगर्व प्रश्न करता है – किं-किं-न साधयति कल्पलतैव विद्या – अर्थात् विद्या कल्पलता है जो कि कल्पनामात्र से वांछित फल प्रदान करती है और यह कल्पलता क्या नहीं कर सकती अर्थात् सब कुछ कर सकती है। आज हम देखते हैं कि उपनिषद की यह थोथी गर्वोक्ति नहीं है। आधुनिक विज्ञान की प्रगति, टेलीफोन, दूरदर्शन और अन्तरिक्ष की यात्रा आदि असंभव को कल्पलता विद्या ने प्रत्यक्ष संभव करके दिखा दिया है।

शिक्षा से भौतिक और आध्यात्मिक दोनों प्रकार की प्रगति होती है। आध्यात्मिक परिवेश पर, अधिष्ठान पर आधारित भौतिक शिक्षा कल्याणकारी होती है। साथ ही शिक्षा व्यक्ति का चरित्र निर्माण करती है। सतत् संस्कारों से शिक्षित हुए व्यक्ति का आचरण प्राप्त शिक्षा के अनुरूप होता है। इस प्रकार शिक्षा प्रथमत: व्यष्टि और फिर समष्टि की रचना करती है।

भारतीय संस्कृति में शिक्षा का इतना महत्व है कि केवल ३२ वर्ष की आयु में अपनी जीवनलीला पूर्ण कर लेने वाले जगद्गुरु आद्यशंकराचार्यजी ने जिन विषयों को भाष्य के लिए प्राथमिकता से चुना उनमें शिक्षा को आश्चर्यचकित कर देने वाला महत्व देते हुए चुना है। हमाये यहाँ चार पुरुषार्थ–धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष हैं। शिक्षा तीनों पुरुषार्थों को पूर्ण करते हुए व्यक्ति की चरम आकांक्षा मोक्ष को भी सुलभ कराती है। श्रीमद् शंकराचार्यजी ने मोक्ष प्राप्ति के सभी विकल्पों पर विचार करते हुए अंत में घोषणा की कि– केवल ज्ञान ही मोक्ष का साक्षात् साधन है। यह भी विशेष ध्यान देने योग्य है कि गुरु अपने शिष्य को सभी प्रकार की शिक्षापूर्ण हो जाने पर समावर्तन संस्कार कराते समय उसे आज्ञा देता है– 'सत्यं वद, धर्मं चर' अर्थात् सत्य भाषण करो तथा धर्म का आचरण करो। इन दोनों आदर्शों की नींव पर भारतीय समाज की कालजयी रचना हुई। यही कारण है कि विश्व की अनेक अति प्राचीन सभ्यताएँ काल के गाल में समा गई किन्तु भारतीय सभ्यता और संस्कृति आज भी चिरजीवी और सतत प्रवहमान है।

आनन्दमयी शिक्षा – हमारी शिक्षा की अवधारणा कभी भी रुक्ष नहीं रही। शिक्षा को ब्रह्मविद्या कहा गया है और ब्रह्म सदैव रसस्वरूप है। उस रस की प्राप्ति होने पर यह जीव रसमय-आनन्दमय हो जाता है। उस रस के परिपाक से पुरुष निर्भय हो जाता है। यह वेद की घोषणा है जो संसार को शिक्षा के माध्यम से निर्भय और आनन्दमय बनाता है। गुरुदेव रविन्द्रनाथ टैगोर की शिक्षा आनन्दमयी थी क्योंकि वह भयरहित थी। **कहानी** - एक बार शांतिनिकेतन की स्थापना के बाद गुरुदेव टैगोर के विद्यालय में अपने छात्रों का शिक्षण देखने कुछ अभिभावक आए। उन्होंने देखा कुछ छात्र गुरुदेव के सामने बैठे एकाग्रचित्त से पढ़ रहे हैं जबकि कुछ पेड़ पर बैठे आम चूस रहे हैं और कुछ धूल में खेल रहे हैं। उन अभिभावकों ने गुरुदेव से जिज्ञासा की तो उन्होंने बताया जिस समय छात्र को शिक्षा में रस आए, उसी समय मैं उन्हें शिक्षा देता हूँ किन्तु खेलना, आम खाना और मुक्त प्रकृति का आनन्द लेना भी शिक्षा है। आज आनन्दमयी शिक्षा के लिए करोड़ों बालक तरस रहे हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जीवन सत्य से परिचित शिक्षा : आनन्दमयी शिक्षा आवश्यक है किन्तु भूखे पेट में आनन्द की उत्पत्ति नहीं हो सकती। इस सत्य से भारतीय दार्शनिक और उपनिषदकार परिचित थे। इसलिए श्रुति ने ब्रह्मज्ञान प्राप्त करने के, शिक्षा प्राप्त करने के जो स्तर तय किए उनमें प्रथम स्तर अन्न था। ब्रह्मज्ञान का प्रथम द्वार अन्न था। अन्न के लोकोत्तर आनंद को वेद के इस वाक्य – अहमन्नमहम्न्नमहमन्नम – मैं अन्न हूँ, मैं अन्न हूँ, मैं अन्न हूँ – यह उन्मत्त भाव एक कृतार्थ हृदय का उद्‌गार है। विजय का उद्‌घोष है। इसलिए कार्लमार्क्स ने भूख के विरुद्ध संघर्ष की जो घोषणा की थी, वह अन्यथा नहीं थी किन्तु संघर्ष का पथ शिक्षा-संस्कार विहीन होने से वह घोषणा सार्थक न हो सकी। भारतीय शिक्षा पद्धति में भूख के विरुद्ध संघर्ष है किन्तु उसका अधिष्ठान आध्यात्मिक है। यह एक आध्यात्मिक संग्राम है जिसे न्यासी भाव (ट्रस्टीशिप प्रिंसिपल) के माध्यम से सम्पत्ति समाज की, के भाव से जीता जाता है। 'तेन त्यक्तेन भुंजिथा' - त्यागपूर्वक उपयोग करने से यह संघर्ष जीता जा सकेगा।

नासिकेत उपाख्यान – वैदिक भारतीय शिक्षा किस प्रकार के बालक तैयार करती थी इसका उदाहरण देना उचित होगा। महर्षि उद्दालक ने विश्वजित नामक यज्ञ के बाद गोदान प्रारंभ किया। उद्दालक के पुत्र नचिकेता ने देखा वे गाएँ झुककर जल नहीं पी सकती थीं, घास नहीं चबा सकती थीं, उनके स्तन दूधरहित थे और इन्द्रियाँ थक चुकी थीं। ऐसी जराजीर्ण गायों के दान से पिता का अपयश होगा। ऐसा सोचकर श्रद्धा से आवेशित नचिकेता ने तीन बार पिता को गोदान से रोका तो क्रुद्ध पिता ने उस कुमार (छोटे बालक) को मृत्यु को दान कर दिया। नचिकेता यमलोक को चल पड़ा और पश्चाताप से दग्ध उसके पिता मूर्छित होकर गिर पड़े। नचिकेता ने बाद में यम से ब्रह्मविद्या का दान प्राप्त किया।

यह कहानी विश्व की सर्वाधिक भाषाओं में अनुदित हो चुकी है। इसमें सत्यं वद, धर्मं चर के आदर्श को यथार्थ में परिणित करने, कथनी और करनी की एकता को साक्षात् जीवन में साकार करने का प्रसंग है। ऐसी थी हमारी शिक्षा।

आधुनिक युग के परिवर्तनों के बीच भी सत्यं वद, धर्मं चर के आदर्श पर आधारित शिक्षा एक आदर्श समाज, राष्ट्र और विश्व के निर्माण में समर्थ है। यह दायित्व छात्रों का है। उपनिषद कहते हैं – छात्र ही गुरु है क्योंकि वह प्रश्न करके उत्तर के माध्यम से ज्ञान को प्रकट करवाता है।

ब्रह्मपुरी चौक, बीकानेर (राज०)

समवेदना

अमेरिका के राष्ट्रपति मि० एब्राहम लिंकन अपने अनेक लोकोत्तर गुणों के कारण काफी प्रसिद्ध हुए हैं। एक बार जाते हुए मार्ग में उन्होंने कीचड़ में एक बीमार सूअर को फँसे हुए देखा। देखकर भी वे रुके नहीं, आगे बढ़े चले गये; किन्तु थोड़ी दूर जाने के बाद वे पुनः वापस लौटे और अपने हाथों से कीचड़ से सूअर को बाहर निकाला। लोगों ने हैरानी से इसका सबब पूछा तो वे बोले,

''मैं आवश्यक कार्य में व्यस्त होने के कारण इसे कीचड़ में फँसा हुआ देखकर चला तो गया, पर मेरे हृदय में एक वेदना-सी बनी रही, मैंने उसी वेदना को दूर करने के लिये इसे निकाला है।'' दुखियों को देखकर हमारे हृदय में जो टीस उठती है, उसी को मिटाने के लिए हम दुखियों का दुःख दूर करते हैं। इसमें उपकार और एहसान की बात नहीं है।

■

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org